Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

भक्तिकाल में अस्पृश्यता

डॉ. गुंजन त्रिपाठी
IN/5C तिलक नगर, अल्लापुर, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश :– आंदोलन हो या काव्य–प्रवृत्ति, सब के उद्‌भव के कुछ प्रेरणा–स्रोत होते हैं, ऐतिहासिक–सामाजिक पृष्ठभूमि होती है। भारत में मध्यकाल में अचानक बिजली की चमक की तरह भक्ति–आंदोलन का उदय हो गया, जिसके बारे में कोई नहीं जानता कि उसका कारण क्या था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने की कोशिश की–''देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया। उसके सामने ही देव मंदिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियां तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। .... अपने पौरुष से हताश अस्पृश्यता के लिए भगवान की भक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा कारण ही क्या था?'' भक्तिकाल में अस्पृश्यता जैसी वैचारिकी प्रभावी स्थिति में थी जो व्यक्ति के उन मूलभूत मानवीय अधिकारों को प्रतिबंधित करती थी जिससे वह सामान्य जीवन का परिप्रेक्ष्य प्राप्त कर पाता। उस समय प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से असमान प्रस्थिति में था। यह असमानता केवल प्रतिष्ठा और परिसम्पत्तियों के स्वामित्व तक ही सीमित नहीं थी, अपितु जाति विशेष का सदस्य होने के नाते वह मानवीय अधिकारों से भी वंचित था जिसका वह अधिकारी था।

मुख्य शब्दः– अस्पृश्यता, मानवीय अधिकार, पृष्ठभूमि, उद्‌भव, अपमान आदि।

विवेकानन्द के शब्दों में– अस्पृश्यता के दर्द को समझने की एक कोशिश ''मानवीय उच्चता को कोई धर्म इतने सुन्दर रूप से व्यक्त नहीं करता जितना कि हिन्दू धर्म और किसी भी धर्म में मानव का इतना अधोपतन देखने को नहीं मिलता जितना कि हिन्दू धर्म में।''

यह एक सोचनीय विषय है कि अस्पृश्यता का जन्म कब हुआ और कहाँ हुआ? जब भी हुआ हो। ये हिन्दू समाज के ऊपर एक दाग है। यदि सृष्टि में कोई भी अनमोल वस्तु है तो वह है 'मानव'; क्योंकि उसी की जाति हम लोग हैं। वह हर चीज को सोचने–समझने की क्षमता रखता है। जब इन्सान एक जैसा ही है और उसकी सारी प्रक्रिया अपने जैसी है तो मानव को इतना रसातल में क्यों रहना पड़ रहा है?

स्पष्ट है कि जितना पुराना हिन्दू धर्म है उतनी ही पुरानी अस्पृश्यता जैसी कटु रुढ़ि। समाज जैसे–जैसे विकसित होता है, वैसे–वैसे व्यक्ति के विचार, भावनाएं एवं सोच हर परिवेश में बदलती रहती है। लेकिन जातिवाद का उत्थान होने के बाद भी अस्पृश्यता के लिए आज तक विशेष बदलाव नहीं आया है। इसी सन्दर्भ में वियोगी हरि ने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये हैं। ''विडम्बना है कि एक ओर आदिगुरु शंकराचार्य के अज्ञान को काशी

में एक शूद्र ने दूर किया था और दूसरी ओर उन्हीं की धर्म की रक्षा के लिए नियुक्त पुरी के शंकराचार्य ने अस्पृश्यता को शास्त्रों द्वारा अनुमोदित कहकर तथा आज भी इसके औचित्य को बताकर एक संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय दिया है।''[1]

भारत में अत्यवत् सर्वभूतेषु और पण्डिताः समदर्शिना का आदर्श वाक्यों को प्रस्तुत करने वाले का अस्पृश्यता को मान्यता प्रदान करते हैं।

हिन्दू लोग न केवल हिन्दू शूद्रों को अपितु सभी बाहरी लोगों को (मुसलमानों को भी) अस्पृश्य मानते हैं।

अस्पृश्यता की परिभाषा– कुछ महत्त्वपूर्ण लेखकों ने अस्पृश्यता को कुछ इस तरह परिभाषित करने की कोशिश की है। डॉ. के.एन. शर्मा ने कहा है कि ''अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाये और उसे पवित्र होने के लिए कुछ कृत करने पड़ें।[2] डॉ. आर.एन. सक्सेना ने इस विचार का खण्डन करते हुए कहा है कि ''दक्षिण भारत की होलिया जाति के लोग किसी ब्राह्मण को अपने गाँव के बीच से नहीं जाने देते हैं और यदि कोई चला जाता है तो वह अपने गाँव की शुद्धि करते हैं।''[3]

अतः स्पर्श होने का आशय पवित्रतम् अथवा अपवित्रम् नहीं हो सकता है। इसीलिए हट्टन ने कुछ नियोग्यताओं के आधार पर अस्पृश्यता को परिभाषित किया है और कहा है कि ''अस्पृश्य जाति वह है जो उच्च जातियों की सेवा पाने के लिए अयोग्य है। हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश करने से निषेधित है, सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग से वंचित है तथा घृणित पेशे से अलग होने में असमर्थ है।'' डॉ. डी.एन. मजूमदार ने हट्टन से भी उत्तम विचार प्रस्तुत किये हैं ''अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जो बहुत सी सामाजिक निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं, जिनमें से अधिकतर निर्योग्यताओं की परम्परा द्वारा निर्धारित करके सामाजिक रूप से उच्च जातियों द्वारा लागू किया गया।[4]

मनुस्मृति में अस्पृश्यता को स्वीकार किया गया है। उसे देव प्रसाद देना भी निषिद्ध था। अस्पृश्य का वह अंग काट दिया जाता था जिससे वह उच्च वर्णों को छूता था, चोट पहुँचाता था। मध्ययुग में उसे चाण्डाल भी कहा गया और जातियों के साथ खान–पान निषिद्ध किया गया था। यदि वे हट करते तो दण्डित किये जाते थे।

भक्तिकाल में अस्पृश्यता के कारण जाति जन्म के आधार पर ही मनुष्य के कर्म–धर्म तथा गुणों का निश्चय होने लगा था। सभी लोग जाति जन्म के अनुसार ही कर्म का चयन कर सकते थे।

भक्तिकाल में उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए कोई प्रयास नहीं किये गये थे जिसके चलते इस अस्पृश्यता ने मनुष्य के मानव होने के अधिकारों को भी समाप्त कर दिये थे। अस्पृश्यता जैसे रोग ने भारतीय समाज को जितना नुकसान पहुँचाया उसकी गणना करना प्रायः असम्भव है। हिन्दू जातियों का एक पहलू यह भी था; क्योंकि उस समय इन जातियों से कोई काम नहीं लिया जाता था। जिससे युद्धों में इनकी ताकत, इनके सहयोग को नहीं लिया गया और मध्यकाल गुलामी की जंजीरों में कैद होता गया और मध्यकाल गुलामी की जंजीरों में कैद होता गया। उस समय युद्ध बुद्धि और बल दोनों से ही लड़े जाते थे। क्या पता इनके सहयोग ने आज भारत को कोई और स्वरूप प्रदान किया होता; क्योंकि बुद्धि और बल ईश्वर प्रदत्त गुण होते हैं और यह किसी में भी हो सकता है। असमानता की वजह से भक्तिकालीन समाज दो वर्गों में बंटा हुआ था। जिसमें कुछ लोग पूजनीय थे तो कुछ लोगों को स्पर्श करना भी अपवित्र माना जाता था। ऐसे लोग जन्मना अस्पृश्य माने गये थे। अस्पृश्य समाज में

चाण्डाल जाति सबसे अस्पृश्य मानी गयी थी। इसकी उत्पत्ति शूद्र अथवा नापित पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से हुई थी। जो अत्यधिक हीन महापातकी, कुत्ते, शूकर और कौए की कोटि के थे। जिनका स्पर्श एवं दर्शन तथा सम्भाषण करना पाप और प्रायश्चित योग्य था।[5]

पूर्व जन्म के असत् कर्मों से उसे चाण्डाल योनि प्राप्त होती थी। अस्पृश्य चाण्डाल जिस गाँव में रहता था वहाँ अध्ययन नहीं किया जाता था, 'सर्व धर्म' बहिष्कृत होने के कारण उसके देखते रहने पर भोजन भी बन्द कर देने की प्रथा थी। कुत्ते उनकी सम्पत्ति होते थे। गाय, बैल, घोड़े आदि उनकी सम्पत्ति नहीं हो सकते थे, कफन उनका वस्त्र था, फूटे बर्तन में यह भोजन करता था। उसका अलंकार लौह धातु का होता था और वह सर्वदा घूमा करता था।

धर्म आचरण करने वाले व्यक्ति उससे न बात करते थे न उसे देखते थे और न ही उसके साथ व्यवहार करते थे। उसे रात्रि के समय विचरण करने की अनुमति नहीं थी वह दिन में राजाज्ञा का विशेष चिन्ह धारण करके गाँव में प्रवेश कर सकता था और बान्धव रहित शव को श्मशान तक ले जा सकता था। प्राण दण्ड पाये हुए व्यक्ति को राजाज्ञा द्वारा वह वध करता था और उसका वस्त्र, शैया और आभूषण आदि वह ग्रहण करता था। पुराणों में भी अस्पृश्यता चाण्डाल के प्रति अमानवीय भावना व्यक्त की गयी है उसे अपवित्र मानकर कुत्ते और पक्षियों की श्रेणी में रखा गया है।

हर्ष के काल में आने वाला चीनी यात्री श्वानच्वांग विस्तृत करता है कि पशुओं को मारकर वह मांस बेचता था। वधिक का कार्य करता था, विष्ठा आदि उठाता था और नगर के बाहर रहता था। उसके घर वर विशेष चिन्ह बने होते थे। बाणभट्ट अपनी कादम्बरी में उसे 'स्पर्श वर्जित' कहने के साथ–साथ बांस की छड़ी बजाकर अपने आने की सूचना देने वाला निर्दिष्ट किया है।[6]

हेमचन्द्र ने लिखा है कि चाण्डाल लकड़ी की आवाज करते हुए चलता था ताकि उच्च वर्ण के लोग छूने से बच जायें।[7]

अलबरूनी लिखता है कि उसका मुख्य कार्य गाँव की सफाई करना था उनके अरब लेखकों ने भी चाण्डाल की निम्न अवस्था का वर्णन किया है। चाण्डाल का वर्ग खिलाड़ी और कलाक्त का था।[8] वह जगह–जगह खेल–तमाशे करके जीविकोपार्जन करता था। कल्हण ने भी उसकी अधम स्थिति का वर्णन किया है।

हेमचन्द्र ने भी चाण्डाल को शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न माना है। जिन व्यक्तियों की माता चाण्डाल होती थी उन्हें मेधातिथि ने सोपाक कहा है। अग्निपुराण ने सोपाक को अपृश्य माना है। बैजयंती कोश (11वीं शताब्दी ई.) में धोबियों, चमारों, वेण, बुरुल, मछेरों, भेड़ों और भीलों की गणना निम्न जातियों में की गयी है। इसमें चमार और मछेर इसलिए अपृश्य समझे गये हैं कि वे नीच व्यवसाय करके आजीविका कमाते थे। पुलिंद, शबर, किरात आदि आदिम जातियाँ पहाड़ों और जंगलों में रहती थीं। वे अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य का मांस अर्पित करती थी। उनका मुख्य व्यवसाय शिकार करना था। वे मांस और सुरा का अधिक प्रयोग करते थे। विवाह करने के लिए वे अन्य व्यक्तियों की स्त्रियों को उठा ले जाते थे। अपने ऐसे घृणित कार्यों के कारण वे सभी अस्पृश्य समझे जाते थे।

हिउएनत्सांग के अनुसार ''कसाई जल्लाद और भंगी वगैरह के (जो चाण्डाल और इसी तरह की दूसरी जातियों जैसे थे) उनके मकान शहर से बाहर रहते थे और अपना विशेष प्रकार का चिन्ह अंकित करते थे।

स्मृतिकारों ने अन्य धर्मावलम्बियों को भी अस्पृश्य माना है। उनके अनुसार बौद्ध, जैन लोकायत नास्तिक कपिल के अनुयायी, शैव और वाम गार्गी शाक्य सभी अस्पृश्य थे। शैवों, पाशुपतो, लोकायतों आदि का स्पर्श करके प्रत्येक उच्चवर्ण के व्यक्तियों को वस्त्रों सहित स्नान करना निर्दिष्ट था।

महाराष्ट्र में महार अपने गले में लटके हुए मिट्टी के पात्र में ही थूक रुकते थे; क्योंकि सड़कों पर थूकने से वह किसी सवर्ण हिन्दू के पैर में लगकर उसे कलुषित कर सकता था। कई ब्राह्मण के महार वाले रास्ते से गुजरे पर महावरों को कांटेदार पेड़ की टहनी से अपने पाँव के निशान मिटाकर टूर लेट जाना पड़ता था जिससे उनकी छाया ब्राह्मणों पर न पड़ सके। मालावार में शाचार को ब्राह्मण से 24 पग, तिया को 26 पग और पुलथन को 96 पग से अधिक दूर रहना पड़ता था।

सोच का सम्बन्ध किसी वस्तु से नहीं जो किसी दायरे में बाँधी जा सके लेकिन जिस विषय में सोचना ही असम्भव हो वही उस वस्तु समाज देश की पराकाष्ठा समझा जा सकता है। हिन्दू समाज इन्हीं रुढ़ियों में अपनी खाई को बढ़ाता गया। आज जिसकी संस्कृति सभ्यता को पूरे विश्व ने सराहा जिसे विश्वगुरु की उपाधि दी जाती थी आज देश में इसी भावनाओं ने हमारे मार्ग को बन्द कर रखा है।

गाँधी जी ने एक बार कहा ''अगर ईश्वर भी अस्पृश्यता को स्वीकार करता है तो मैं उसे ईश्वर मानने से इन्कार कर दूँगा।'' अगर एक भंगी को अस्पृश्य समझा जाता है तो एक माँ को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है। यदि मांस जलाने वाले, काटने वाले को अस्पृश्य समझा जाता हो तो साइंस, बॉयोलॉजी के छात्रों को भी एक डॉक्टर को भी अस्पृश्य माना जाना चाहिए। लेकिन इन्हीं दोहरे मापदण्डों से आज हमारा देश पिछड़ता जा रहा है। समाज में हमें आज ऐसे मापदण्ड स्थापित करने होंगे जिसमें छुआछूत, ऊँच–नीच की भावनाओं का समूल नष्ट हो जाय। आज हमें मिलकर एक ऐसा प्रयास करना चाहिए जिससे देश में फैली असमानता दूर हो, सोच के स्तर को ही मिटाना है, बदलना है, बदलाव शुरू करना है।

सरकार ने अस्पृश्यता निवारण के लिए बहुत से कार्यक्रम निर्धारित कर रखे हैं। मगर जमीनी स्तर पर इसका प्रसार सीमित ही है। आज भी हमें हर जगह ऐसी बस्तियां, ऐसे लोग दिखाई देते हैं जिनका कोई ठिकाना नहीं। इंसान होकर खाना–बदोश की जिन्दगी देखकर मर्मराहट सी होती है, क्या करें जिससे इनकी जिन्दगी आसान हो और आम जिन्दगी जी सके। इनके घरों को देखकर लगता है कि आज भी हम सदियों पुराने उस पाषाण युग में रह रहे हैं जहाँ लोग एक दूसरे से बात नहीं कर सकते थे। कब होगा इनका विकास? क्या किया जाय? क्या देश में कोई चमत्कार कभी होगा? जब इतनी बड़ी खाई मिटेगी। आयें, हम मिलकर इस देश के लिए कुछ करने का संकल्प लें और इनके उत्थान के लिए आप भी सोचें ताकि इंसान को जानवरों की श्रेणी से निकाला जा सके और मानव अस्तित्व को बचाया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वियोगी हरि, शंकर दिग्विजय (हिन्दुस्तान प्रकाशित वक्तव्य)
2. डॉ. के.एन. शर्मा, भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृष्ठ–272
3. डॉ. आर. एन. सक्सेना, भारतीय समाज तथा सामाजिक संस्थाएं, पृष्ठ–99
4. मजूमदार डी.एन. रेसेज एण्ड कल्चर आफ इण्डिया, पृष्ठ–226
5. मनुस्मृति, 10/12 महाभारत (अनुशासन पर्व) 29/27
6. कादम्बरी, पृष्ठ –21 एवं 25
7. देशीनामा पृष्ठ 2 व 77
8. जयशंकर प्रसाद मिश्र, ग्यारहवीं शदी का भारत, पृष्ठ – 127